१०. ध्यान-योग की महिमा

प्यारे लोगो!

यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहु योजनम्।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन।।
बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्।
सशब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्।।

—ध्यानविन्दूपनिषद्

संसार में लोग बराबर काम किया करते हैं। कामों को साधारणतः दो भागों में बाँट सकते हैं—शुभ और अशुभ। शुभ कर्म को पुण्य कहते हैं तथा अशुभ कर्म को पाप कहते हैं। जिस कर्म से आत्मा की ऊर्ध्वगति हो, उसे पुण्य तथा जिस कर्म से आत्मा की अधोगति हो, उसे पाप कहते हैं। पुण्य कर्म करनेवाले को पुण्यात्मा—धर्मात्मा कहते हैं और पाप कर्म करनेवाले को पापात्मा कहते हैं। पाप का फल दुःखमय तथा पुण्य का फल सुखमय होता है। लोग अधिकतर पाप ही करते हैं तथा उसका फल दुःख भोगना नहीं चाहते, शान्तिमय सुख प्राप्त करने की ही अभिलाषा रखते हैं। फिर लोग यह भी समझते हैं कि पाप किया, फिर पुण्य करने पर पाप कट जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं होता। यहाँ यह हिसाब नहीं है कि दो में से दो घटाओ (२ — २ = ०), तो बाकी कुछ नहीं बचेगा। हाँ, यह अवश्य है कि पुण्य का फल अलग तथा पाप का फल अलग भोगना पड़ेगा।

महाराज युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा थे। नित्य ब्राह्मण भोजन कराते थे, दान करते थे, बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, दुर्गम-से-दुर्गम स्थान में तीर्थ करने गये थे। जहाँ वे स्वयं नहीं जा सकते, वहाँ भीम के पुत्र घटोत्कच की सहायता से उस दुर्गम स्थान में जाते थे। भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन भी उनको बराबर ही हुआ करता था। वे सदा सत्य बोलते थे; लेकिन केवल एक शब्द झूठ बोलने पर मिथ्या नरक देखना पड़ा तथा नरक का दुःख भोगना पड़ा, जैसा कि महाभारत में लिखा है। तप, दान-पुण्य, तीर्थ, यज्ञ आदि कितना शुभ कर्म, पुण्य कर्म उन्होंने किया, किन्तु इतने पुण्य करने पर भी एक झूठ बोलने के कर्म-फल से नहीं बच सके। इससे जानना चाहिए कि पुण्य करने से पाप कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता। किन्तु ध्यानविन्दूपनिषद् के उपर्युक्त श्लोक एक से जानने में आता है कि कई योजन तक फैला हुआ पहाड़ के समान यदि पाप हो, तो वह ध्यानयोग से नष्ट हो जाता है; इसके समान पापों का नाश करनेवाला कभी कुछ नहीं हुआ है।

तो अब विचार करना चाहिए कि ध्यानाभ्यास से पाप नष्ट हो जायगा, यह ऋषि-वाक्य (उपनिषद् में) है; इसलिए मान लें अथवा इसको तर्क-बुद्धि से भी जानने की कोशिश करें, तो तर्क-बुद्धि से विचारने पर भी यही ज्ञात होता है कि ध्यानाभ्यास से अवश्य नष्ट होगा; क्योंकि जो मनुष्य ध्यानाभ्यास करता है, वह अपने मन को विषयों से हटाकर एक ओर लगाता है। वह एकओरता एक विन्दु है। विन्दु उसे कहते हैं, जिसका स्थान हो, परिमाण नहीं। तो इतने सूक्ष्म पर अपने मन को पहले-पहल लगाना सम्भव नहीं; क्योंकि मोटे अक्षर के लिखे बिना बारीक अक्षर नहीं लिख सकते। इसलिये पहले मोटा-मोटी इन्द्रिय-गम्य पदार्थ का ही अवलम्बन लेना उचित होगा। साधु-सन्तों ने पंच विषयों में से दो विषयों—रूप और शब्द को लेने बताया अर्थात्

किसी एक रूप को, जिसमें अपनी पूर्ण श्रद्धा हो, उस रूप के मानस-ध्यान का तथा उस इष्ट-सम्बन्धी शब्द के मानस-जप का अवलम्ब सन्तों ने बताया। यह आरम्भिक साधन है। इस प्रकार मन को एक ओर करते हैं। फिर विन्दु-ध्यान के द्वारा मन का पूर्ण सिमटाव हो जाता है। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होती है। ऊर्ध्वगति होने के कारण वह स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर जाता है। लोग स्थूल विषयों में फँसकर ही पाप करते हैं। जो स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश कर जाय, उससे पाप होना सम्भव नहीं; क्योंकि इस प्रकार सूक्ष्म-ध्यान करते-करते उसका मन स्थूल विषयों से हट जाता है। ऐसी अवस्था में उससे पाप हो सके, असम्भव है अर्थात् उससे पाप-कर्म नहीं हो सकता है। फिर सूक्ष्म में सूक्ष्म नादों का ग्रहण होगा, जिसके द्वारा ऊर्ध्व की ओर खिंचाव होगा, तब कारण और महाकारण को भी पार कर कैवल्य दशा प्राप्त कर, इस प्रकार वह जड़ के सब मण्डलों को पार कर कर्म-मण्डलों को पार कर जाता है। जो कर्म-मण्डलों को पार कर गया, उसका पीछे का किया हुआ जो सञ्चित कर्म है, उससे वह छुटकारा पाकर प्रारब्ध के बन्धन से छूट जाता है। जो कर्म-मण्डल को पार कर गया है, वह कर्म-फल के घेरे में नहीं रह सकता। इस प्रकार ध्यानाभ्यास के द्वारा सब पापों से मुक्त हो जाता है और परमपद प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्महत्या सहस्राणि भ्रूणहत्या शतानि च।
एतानि ध्यानयोगश्चदहत्यग्निरिवेन्धनम्।।३८।।

—उत्तरगीता, अ० २

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि पाप करते जाओ और ध्यान करते जाओ, पाप कट जायगा। बात तो यह है कि जबतक कोई संयमी नहीं बनेगा, पाप-कर्मों से अपने को नहीं बचावेगा, तबतक उससे ध्यान हो नहीं सकता है। अत: मनुष्य को संयमी होना चाहिए अर्थात् झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार; इन पाँच पापों से मनुष्यों को अलग रहना चाहिए। एक सर्वेश्वर पर अचल विश्वास, पूर्ण भरोसा तथा अपने अन्तर में ही उसकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय रखना चाहिए।

आप कहेंगे कि बाहर में परमात्मा को क्यों नहीं प्राप्त करेंगे? तो पहले यह जानना चाहिए कि परमात्मा इन्द्रियगम्य नहीं है, वह आत्मगम्य है। बाहर में आप इन्द्रियों के संग-संग चलेंगे; किन्तु अन्तर में चलने के समय इन्द्रियों से छूटते हैं। इसके लिए जाग्रत् से स्वप्नावस्था में जाने की स्थिति पर विचार कीजिए। जाग्रत्-स्वप्न के बीच एक तन्द्रावस्था होती है। उसमें क्या होता है? हाथ-पैर कमजोर होते जाते हैं। उसमें गला झुक जाता है, ज्ञात होता है कि शक्ति भीतर की ओर खिंची जा रही है, बाहर का ज्ञान जाता रहता है। सामने का कोई रूप नहीं देख सकते; कोई सुमधुर शब्द में गाना गाता है, तो उसे भी नहीं सुन सकते, क्यों? उस समय बाहर से सिमटकर भीतर प्रवेश करने में बाह्य इन्द्रियों का संग छूटता है। इन्द्रियों का संग छोड़कर आप अकेले रहकर उस परमात्मा की पहचान कर सकते हैं। इसलिए अपने भीतर प्रवेश कीजिये। जब अपने अन्दर में पहचान हो जायगी, तब बाहर में भी पहचान सकते हैं।

सब किछु घर महि बाहरि नाहीं।
बाहरि टोलै सो भरमि भुलाहीं।।
गुरु परसादी जिनि अन्तरि पाइआ।
सो अन्तरि बाहरि सुहेला जीउ।।

—गुरु नानकदेव

सद्गुरु की निष्कपट सेवा, सत्संग और दृढ़ ध्याना-भ्यास; इन त्रिविध कर्मों को नित्य करना चाहिए।

यह प्रवचन बिहपुर (जिला—भागलपुर) हाई स्कूल के प्रांगण में दिनांक २६.१.१९५१ ई० के सत्संग में हुआ था। ❐